SĀRASVATAM

सारस्वतम्

Pandit Rampratap Shastri Publications Series No. 1

SĀRASVATAM

[KĀVYAM]

DR. RASIK VIHARI JOSHI
M.A., PH. D., D. LITT. (PARIS)
Professor & Head of the Department of Sanskrit
University of Delhi, Delhi (India)

Pandit Rampratap Shastri Charitable Trust
BEAWAR (Raj.)

पण्डित रामप्रताप शास्त्री ग्रन्थमाला संख्या १

सारस्वतम्

[काव्यम्]

डॉ. रसिक विहारी जोशी
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट् (पेरिस)
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पण्डित रामप्रताप शास्त्री चेरिटेबल ट्रस्ट
ब्यावर (राजस्थान)

प्रकाशक :
पण्डित रामप्रताप शास्त्री चेरिटेबल ट्रस्ट
३४, रामप्रताप शास्त्री मार्ग;
ब्यावर (राजस्थान)

ब्रांच ऑफिस :
द्वारा
राधाकृष्ण जनरल स्टोर
चौक बाजार, सादाबाद
पिन : 281306

प्रथम संस्करण : अप्रैल १९७९

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक :
जैनसन्स प्रिन्टर्स
४/४५ तकिया वजीरशाह, सेठगली, आगरा-

वैयाकरणतल्लजेभ्यः परमभागवतेभ्यो मत्प्रपितामहेभ्यः
पण्डितश्रीबालानन्दजोशीमहाभागेभ्यः
सादरं सप्रश्रयं सभक्त्युन्मेषञ्च

समर्पयामि

॥ श्रीः ॥

भो भोः सरस्वतीसमुपासका विद्वांसः !

नातिक्रान्तः खलु भूयानेव कालो यदा विशालेऽस्मिन् संस्कृतसाहित्ये केवलमङ्गुलिमात्रगणनीयानि द्वित्राणि पञ्चषाणि वा सरस्वतीस्तोत्राणि दर्शं दर्शं भगवतीं सरस्वतीं स्तोतुकामोऽहं पञ्चदशदिवसाभ्यन्तर एव काव्यमिदं विरचय्य नूनं कृतकृत्यमिवात्मानमाकलयामि। पुरातनैः कविभिः पूर्वं वर्णितानामर्थानां शब्दान्तरेण संघटनामात्रेण न खलु काव्ये काचिच्चमत्कृतिरनुभूयते सहृदयैः। न च कोऽपि सर्वथाऽपूर्वाणि पदानि काव्यार्थान् वा घटयितुं प्रभवति। तथापि यदा कवेश्चित्तं पुरातनानां कवीनामर्थग्रहणाद् विरमति, तदा प्राक्तनशुभकर्मपाकवशेनैतादृशस्य कवेर्बुद्धौ नवं नवं काव्यार्थमाविर्भावयति स्वयं भगवती सरस्वतीत्यत्र नास्ति मे स्तोकोऽपि सन्देहः। यथाहि—

"परस्वादानेच्छाविरतमनसो वस्तु सुकवेः
सरस्वत्येवैषा घटयति यथेष्टं भगवती।"

आनन्दवर्धनः, ध्वन्यालोकः, ४, १७.

तदिदं 'सारस्वतम्' अपि काव्यं भगवत्याः सरस्वत्या अहैतुक्याऽनुकम्पया मम चित्ते स्फुरितं यदि काव्यवासनापरिपक्वमतीनां श्रीमतां नयनगोचरतामापतितं श्रीमत्स्नेहमुपगच्छेत् तदा मादृशस्य परिमितमतेरपि धृतविग्रहोऽयं सङ्कल्पः साफल्यमनुविन्देत। प्रदत्तामाशिषं भगवती सरस्वतीति शम्।

२४ एप्रिल, १९७९
दिल्ली

विदुषां विधेयः,
रसिकविहारी जोशी

श्रीरसिकविहारिजोशिविरचितम्

सारस्वतम्

॥ श्रीः ॥

सारस्वतम्

[हिन्दी अनुवाद]

[१]

हे अम्बिका ! (पूज्यपाद पिताजी) श्री रामप्रताप जी के चरणामृत का पान करने से मुझ (रसिकविहारी) को नव-नव बुद्धि का वैभव मिल गया है और मैं प्रसन्न हो गया हूँ। तुम मति प्रदान करने वाली हो। प्रज्ञा को अलङ्कृत करने की कला में प्रसिद्ध तुम्हारी शरणागति को प्राप्त करने के लिए मैं वाणी से तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

[२]

श्री राधा की 'करुणाकटाक्षलहरी' की रचना से उदित पुण्य समुद्र में स्नान करने से मैं सहसा विद्या के प्रसाद से युक्त हो गया हूँ। हे शारदा ! आज तुम्हारी 'करुणा-कटाक्षलहरी' में स्नान करने की इच्छा से तुम्हारे चरणकमल के रज के पराग के एक लघु कण को ही प्रणाम करके ही मैं प्रसन्न हो गया हूँ।

[३]

हे माँ सरस्वती ! कल्पान्त अग्नियों के साथ सैकड़ों चन्द्रमा तथा लाखों सूर्य भी जिस (अज्ञानान्धकार) को लेशमात्र भी स्पर्श करने में समर्थ नहीं होते, तुम्हें एक बार भी प्रणाम करने वाले मेरे उसी अज्ञानान्धकार को तुम्हारी मुस्कराहट की कान्ति का प्रवाह तत्काल नष्ट कर देता है।

[४]

हे भगवती सरस्वती ! तुम वरदा हो ! मेरे जिस अज्ञानान्धकार को विशद रहस्य वाली विद्याएँ तथा विशुद्ध योग भी नष्ट करने में समर्थ नहीं हैं, उसी को (संगीत के मान) ग्रामों से मधुर तथा कर्णानन्ददायिनी तुम्हारी वीणा की ध्वनि तत्काल नष्ट कर देती है।

॥ श्रीः ॥

सारस्वतम्

[काव्यम्]

[१]

रामप्रतापचरणामृतपानलब्ध-
प्रत्यग्रबुद्धिविभवो रसिकः प्रसन्नः ।
प्रज्ञाप्रसाधनकलाप्रथितां प्रपत्ति
प्राप्तुं स्तवीमि वचसा मतिदेऽम्बिके ! त्वाम् ॥

[२]

श्रीराधा-'करुणाकटाक्षलहरी'-निर्माणलब्धोदये
पुण्योदन्वति मज्जनेन सहसा विद्याप्रसादान्वितः ।
अद्य त्वत्करुणाकटाक्षलहरीसिस्नासया शारदे !
त्वत्पादाब्जरजःपरागकणिकां नत्वैव तुष्टोस्म्यहम् ॥

[३]

शतं शीतांशूनामयुतमरविन्दप्रियरुचा-
मपि स्प्रष्टुं नालं भवति सह कल्पान्तदहनैः ।
यदज्ञानध्वान्तं सकृदपि नतस्य स्मितरुचि-
प्रभापूरस्तूर्णं क्षपयतितरां तेऽम्ब ! मम तत् ॥

[४]

न विद्यास्थानानि प्रविशदरहस्यानि वरदे !
न वा योगाः शुद्धास्तिरयितुमिदं सन्ति कुशलाः ।
तदज्ञानध्वान्तं सपदि धुनुते मे भगवति !
क्वणन्ती ते वीणा श्रुतिसुखपदग्राममधुरा ॥

[५]

हे भगवती ! चन्द्रमा के अमृत का शीघ्रता से तिरस्कार करने में निपुण तथा दयार्द्र तुम्हारा कटाक्ष जब किसी जड़ व्यक्ति को भी सींच देता है, तब उसी क्षण उसकी भवसागर की विपत्ति मन्द हो जाती है और वह सौभाग्य से उद्धुर देवताओ द्वारा भी नमस्कार करने के योग्य गुरुत्व को प्राप्त कर लेता है।

[६]

जिस प्रकार चुम्बक लोहे के टुकड़े निरन्तर खींचता रहता है उसी प्रकार तुम्हारा मुखारविन्द भी प्रणत (भक्त) जनो की बुद्धि-परम्पराओ को निरन्तर आकर्षित करता रहता है। सुरगुरु (बृहस्पति) तुमको प्रणाम करते है। तुम्हारी वह अनिर्वचनीय वीणा, भजन करने वाले के लिए, पुष्परस की वर्षा करती हुई तत्क्षण उनको प्रवीण देवता बना देती है।

[७]

कौन कवि अपनी वाणी से तुम्हारे प्रतिपल मनोरम रूप सौन्दर्य का वर्णन करने मे समर्थ हो सकता है ? जिसके लिए तुम्हारी गुणकथा के रसिक शिवपुत्र कार्तिकेय भी क्षीण एकमुखता का त्याग करके षण्मुखता धारण करते है।

[८]

प्राचीन काल मे इस हिरण ने तुम्हारे चरणो की पूजा की थी जिसके फलस्वरूप (भगवान्) पशुपति शकर के ललाट पर स्थित चन्द्रमा मे स्थान प्राप्त किया था। वही (हिरण) अब उनके जटाजूट को छोड़कर रस से लबालब भरे हुए प्यालों के समान तुम्हारे चरणों का हृदय मे स्मरण करके क्या प्रसन्नता से वही रहता है ?

[९]

जो व्यक्ति समाधि मे वाग्देवी के उन चरणारविन्द का साक्षात्कार कर लेता है, जो अत्यन्त विशद है तथा जो देवराज (इन्द्र) तथा शंकर द्वारा भी पूज्य है। उस व्यक्ति के मुख से मधुरस को लज्जित करने वाली वाग्धारा उसी प्रकार प्रवाहित होती है जैसे हिमालय से देवगङ्गा का प्रवाह।

[५]

सुधायाः शुभ्रांशोः सरभसतिरस्कारनिपुणो
दयार्द्रस्तेऽपाङ्गो भगवति ! जडं सिञ्चति यदा ।
तदैवायं मन्दीकृतभवविपत्तिर्दिविषदां
गुरुत्वं सौभाग्योद्धुरसुरनमस्यं कलयते ॥

[६]

यथाऽयस्कान्तोऽयःशकलमनुकर्षत्यविरतं
तथैव त्वद्वक्त्राम्बुजमपि नतानां मतिततिम् ।
प्रवीणान् ते वीणा सुरगुरुनुते ! कापि भजतो
मरन्दं वर्षन्ती सपदि कुरुते किञ्च दिविजान् ॥

[७]

कविः को वा वाचा गणयितुमलं रूपसुषमां
त्वदीयां जायेत प्रतिपलमनोज्ञां, शिवसुतः ।
यदर्थं षड् धत्ते मुखसरसिजान्येकमुखतां
परित्यज्य क्षीणां तव गुणकथामात्ररसिकः ॥

[८]

कुरङ्गोऽयं पूर्वं तव चरणपूजाफलवशाद्
ललाटस्थे चन्द्रे निवसतिमयासीत् पशुपतेः ।
जटाजूटं त्यक्त्वा भजति तव पादौ किमु मुदा
हृदि स्मारं स्मारं रसभरपरीपाकचषकौ ॥

[९]

समाधौ वाग्देव्याश्चरणकमलं येन ददृशे
सुनासीरस्थाणुप्रभृतिपरिपूज्यं सुविशदम् ।
सरेद् धारा वाचां मधुरसमुचां तस्य मुखतो
यथा नीहाराद्रेः प्रवहति रयो देवसरितः ॥

[१०]

हिमालय मे देवगङ्गा के तीव्र प्रवाह के समान बिना प्रयत्न के भी वाणी का शुभ प्रवाह मूक व्यक्ति से भी निकलने लगता है। यदि तुम्हारी करुणाकटाक्षों के साथ थोड़ी सी भी दृष्टि किसी मन्द व्यक्ति की तरफ भी स्फुरित हो जाती है तो वही पर-ब्रह्म का रस (ब्रह्मानन्द) फैल जाता है।

[११]

यदि मेरे प्रति प्रिय बन्धु बान्धव भी सन्ताप के सिन्धु बन जाते है तो वहाँ मेरे ही पाप कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नही है। यदि विघ्नों का नाश करती हुई तुम्हारी दृष्टियाँ मुझ पर नही गिरती तो कहाँ तो मेरा श्रेयोमार्ग है और कहाँ कुल की कीर्ति की गौरव कथा है।

[१२]

अव्यक्त तथा मधुर-मधुर शब्द करने वाली एक तोते की जोड़ी तुम्हारे चरणों में निवास करती है। उसमे से एक (नर तोता) तो खिन्न होने से भूखा है और दूसरी (मादा तोती) प्यासी होने से खूब पीना चाहती है। क्या एक प्रमुदित होकर तुम्हारे कर्णकमल को खाना चाहता है और क्या दूसरी हाथ में धारण किये हुए अमृत को पीना चाहती है ?

[१३]

हे माँ सरस्वती ! यह (व्यक्ति) न तो तुम्हारा मन्त्र जानता है, न तुम्हारा शुभ यन्त्र जानता है, न स्तुति करने की रीति से परिचित है और न अपने दुःख की परम्परा को कहने की विधि जानता है, न ही तुम्हारे पादप्रक्षालन की विधि के लिए निष्पाप पात्र है, तथापि तुम्हारी स्तुति करने का यत्न कर रहा है। केवल उसका हृदय (श्रद्धा तथा भक्ति से तुम्हारे चरणो में) प्रणत है।

[१४]

पहले कभी अर्द्धरात्रि में भक्त-मण्डली के भवरोग का नाश करने में निपुण तुम किसी मन्दिर के छज्जे से प्रकट हुई थी। कभी अपने चरणयुगल के ध्यान के रस से 'मूक' नामक व्यक्ति को कवि शिरोमणि बनाने के लिए पृथ्वी पर उतरी थी।

[१०]

तुषाराद्रेराशु त्रिदिवसरितः पूर इव सा
विना यत्नं मूकादपि पतति वाचां शुभततिः ।
त्वदीयेषद्दृष्टिः स्फुरति यदि मन्देऽपि करुणा-
कटाक्षैस्तत्रैव प्रसरति रसो ब्रह्मपरमः ॥

[११]

प्रियो वन्धुः सिन्धुर्भवति मयि तापस्य यदयं
न तत्रान्यो हेतुः प्रभवति परं मे शितिकृतिः ।
क्व मे श्रेयान् पन्थाः क्व च कुलयशोगौरवकथा
बिभिन्दन्त्यो विघ्नान् यदि न हि पतेयुस्तव दृशः ॥

[१२]

कलं कूजन्मातस्तव पदमितं कोरमिथुनं
तयोरेकः खिन्नः क्षुधित इतरोदन्यति भृशम् ।
किमेकस्ते कर्णाम्बुजमशितुमिच्छुः प्रमुदितः
परा किं पीयूषं पिबति तव हस्ते धृतमपि ॥

[१३]

न जानीते मन्त्रं न च जननि ! यन्त्रं तव शुभं
न च स्तोतुं रीतिं न च कथयितुं दुःखसरणिम् ।
न वाऽपापं पात्रं तव चरणनिर्णेजनविधौ
तथापि स्तोतुं त्वां प्रणतहृदयोऽयं प्रयतते ॥

[१४]

कदाचिद् भक्तालीभवगदविनाशैकनिपुणा
निशीथिन्यां सिद्धायतनवलभीतः प्रकटिता ।
कदाचिन्मूकाख्यं चरणयुगलध्यानरसतः
कवीनां मूर्धन्यं रचयितुमिलायामवतरः ॥

[१५]

कभी ब्रह्मा को वेदों से युक्त करने के लिए तुमने यत्न किया था और कभी वेद की श्रुतियों को ब्रह्मद्रव से सौ गुना करने के लिए तुम प्रकट हुई थी। तुमको (शास्त्र) प्रख्योपाख्या से सुन्दर कहते है। इसलिए कौन विद्वान तुम्हारी स्तुति करने वाले के उत्कर्ष की ऊँचाई को नही जानता?

[१६]

हे सरस्वती! जो व्यक्ति तुम्हारी सेवा, स्तुति, प्रणाम तथा पूजा की विधि को नही जानता हुआ भी तुम्हारे चरणारविन्द को निरन्तर तीन रात तक अथवा त्रिरात्र (उपासना) विधि से स्मरण करता है; तुम, मदनाशक कृपापांग के आसंग से गूंगे को वाचस्पति और अत्यन्त निर्धन को धनपति कुवेर वना देती हो।

[१७]

जव वीणापाणी (सरस्वती) रस भरी वीणा को वजाती है तब हृदय-कमल की गुहा में वेदध्वनि का नाद गूँजने लगता है और प्रणाम करने वाले भक्तों में तत्काल (समस्त) प्राणियों में समभावना तथा तुम्हारी पूजा विधि में प्रणिधान उत्पन्न हो जाता है।

[१८]

पहले कभी शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा ने तुम्हारा मुखचन्द्र देखकर उससे मित्रता करने की इच्छा से प्रसन्न होकर अपनी वृद्धि करने की इच्छा की थी। किन्तु वह तुम्हारे मुखचन्द्र को मृगशिशु से हीन तथा स्वयं अपने विम्ब को मृगशिशु से युक्त देखकर तत्काल लज्जा के समुद्र में डूब गया।

[१९]

जव हंस (जीवात्मा) हृदय-कमल की कर्णिका मे 'सोहम्' मन्त्र का (अजपाजप विधि से) रणन करना चाहता है, तव चिदाकाश के कुहर में दिव्य नाद गूंजने लगता है। जैसे सूर्य अन्धकार को तत्काल नष्ट कर देता है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि द्वारा पूज्य यह मन्त्र भी पापराशि को नष्ट कर देता है।

[१५]

कदाचिद् ब्रह्माणं श्रुतिभिरुपयोक्तुं व्यवसिता
श्रुतीश्चापि ब्रह्मद्रवशतगुणाः कर्तुमुदिता ।
इति प्रख्योपाख्याप्रसरसुभगे ! ते स्तुतिमतः
समुत्कर्षोत्साहस्तव न विदितः कस्य विदुषः ।।

[१६]

अजानन् यः सेवास्तुतिनतिसपर्याविधिमपि
त्रिरात्रं वाग्देवि ! स्मरति सततं तेऽङ्घ्रियुगलम् ।
अवाचं वागीशं भगवति ! तमस्वं धनपतिं
कृपापाङ्गाऽऽसङ्गैः कृतमदविभङ्गैः कलयसे ।।

[१७]

यदा वीणापाणी रणयति विपञ्चीं रसझरीं
तदाऽऽम्नायध्वानः प्रणदति हृदम्भोजकुहरे ।
समत्वं भूतेषु प्रणिहितमथो तेऽर्चनविधौ
झटित्येवोद्यातः प्रणमनपरे भक्तनिकरे ।।

[१८]

मुखेन्दुं ते दृष्ट्वा क्वचिदपि पुरा सौहृदधिया
सिते पक्षे चन्द्रः प्रमुदितमना ऐदिधिषत ।
विपश्यन् वक्त्रेन्दुं मृगशिशुविहीनं तव तथा
स्वकं बिम्बं तद्युग् ब्रुडति नु तदा ह्रीजलनिधौ ।।

[१९]

यदा हंसः 'सोऽहं' रिरणिषति चेतोम्बुजदले
तदा नादो दिव्यः प्रणदति चिदाकाशकुहरे ।
यथा सूर्यः सद्यो नुदति तिमिरं, पापनिचयं
तथैवासौ मन्त्रो हरिहरविरिञ्चादिमहितः ।।

[२०]

हे शारदा ! जैसे ही कोई जड़मति भी तुम्हारे चरणों में प्रणाम कर लेता है वैसे ही तुम्हारी कृपा का एक ही कण उसे वाचस्पति बना देता है और वह, चन्द्र तथा कुमुद के समान उज्ज्वल तथा देवताओं से अभीप्सित यश को तथा रस-सुधा का भी तिरस्कार करने वाली शुभ वाणी को प्राप्त कर लेता है।

[२१]

हे सरस्वती ! तुम्हारे चरण कमल का ध्यान करने वाले व्यक्ति से निकली हुई, सुधा रस का तिरस्कार करने वाली, वाणी की जय होती है। कुशाग्रबुद्धि ब्रह्मा भी तुम्हारे चरणकमलयुगल से विमुख हो जाने पर क्या कविता करने में समर्थ हो सकता है ?

[२२]

हे सरस्वती ! तुम ब्रह्मा के हृदय-कमल को खिलाने के लिए सूर्य-किरण की प्रभा हो। तुम सुरासुरों के महागुणों की उत्पत्ति के लिए समस्त विद्याओं की निधि हो। जिस प्रकार गतिकला में चतुर हंसी तुम्हारे चरण-कमल की सेवा करती रहती है, उसी प्रकार गति (मोक्ष) कला के चतुर मुमुक्षुओं के गण भी हृदय से निरन्तर तुम्हारे चरण-कमल की उपासना करते है।

[२३]

हे माँ सरस्वती ! जिस कारण से चन्द्रमा ने हिरण को अपने हृदय मे धारण किया था और जिस कारण से तुमने उसके शरीर पर अपने चरण स्थापित किये थे। इसीलिए ऋषियों द्वारा सादर यह हिरण पृथ्वी पर झुकी हुई, दिव्यांगनाओं के दृगञ्चल की तुलना पर रखा जाता है।

[२४]

हे माँ सरस्वती ! कवि निरन्तर यह कल्पना करते हैं कि यमुना तुम्हारे स्तन-पर्वतों के तटों के बीच में लीन हो गयी। यह कल्पना मिथ्या नहीं है क्योंकि तुम्हारे उदर पर उच्छलित होने वाली यमुना वास्तव में अतनु उदर-रोमावली के व्याज से भासित होती है।

[२०]

यदैव तव शारदे ! जडमतिर्नमेत् पादयो-
स्तदैव विदधात्यमुं तव कृपालवो गीष्पतिम् ।
हिमांशुकुमुदोज्ज्वलं सुरसमीहितं सद्यशो
भजेच्च स शुभां गिरं रससुधातिरस्कारिणीम् ॥

[२१]

त्वदीयपदपङ्कजं कलयतो जनान्निर्गताः
सुधारसमुचो गिरो भुवि जयन्त्यहो शारदे ! ।
त्वदङ्घ्रिसरसीरुहाद् विमुखशेमुषीको विधिः
कुशाग्रमतिरप्यहो कवयितुं भवेत् किं क्षमः ॥

[२२]

प्रजापतिहृदुत्पलस्फुटनभानुरश्मिप्रभे !
सुरासुरमहागुणप्रभवसर्वविद्यानिधे ! ।
यथा गतिकलापटुर्वरटिका मुमुक्षुव्रज-
स्तथैव सततं हृदा तव पदाम्बुजं सेवते ॥

[२३]

यतः शशधरो दधावजिनयोनिमन्तर्हृदि
यतश्च जननि ! त्वया वपुषि तस्य पादौ दधे ।
अतः कविभिरादराद्धरिण एष दिव्याङ्गना-
दृगञ्चलतुलामिलातलनुतां सदा नीयते ॥

[२४]

कुचाचलतटान्तरे तव कलिन्दकन्या लयं
गतेति कविकोकिलैरनिशमम्ब ! यत् कल्प्यते ।
मृषा न खलु तद् यतस्त्वदुदराञ्चलादुच्छलद्-
गतिः प्रतिविभाति साऽतनुतनूरुहां व्याजतः ॥

[२५]

तुम्हारे मार्ग में रहने वाले विद्वानों के चित्त-चक्षुओं को तुम्हारी करुणा-अनिता अवश्य ही तत्काल व्यथित कर देती है। इसीलिए यह प्रसिद्ध है कि तुम अपने जनों को प्रसन्नता से पालन करती हो। हे माँ सरस्वती ! फिर भी मेरे प्रति तुम्हारा यह तटस्थ आचरण क्यों स्फुरित होता है ?

[२६]

आलसी मन निरन्तर निद्रा में अभिभूत रहता है। शरीर ईर्ष्या से क्षीण होता रहता है। सुमति कुमतिसंग से नष्ट होती रहती है। न तो मेरी शिवकथा में रति है और न ही समाधि योग में गति है। हे शारदा ! इसलिए तुम्हारा अभ्युपगम ही स्वतः स्वयं मेरा वरण करे।

[२७]

हे शारदा ! प्रशस्त मणियों और मोतियों की मालाओं से तुम्हारी स्तनयुगली शोभित है। तुम्हारे कलेवर की कान्ति ने सुवर्ण-पर्वत की प्रभा को जीत लिया है। श्वेत-हंस-पीठ पर तुमने अपना आसन ग्रहण कर रखा है। मुझ जैसे प्रमत्त को भी तुम ऐसा बना दो जिसकी बुद्धि से देवगुरु (बृहस्पति) भी जीत लिया जाय।

[२८]

हे सरस्वती ! तुम्हारा मुखचन्द्र निशानाथ चन्द्रमा को जीतने करता है। तुम अपनी करुणा दृष्टि से (मेरी) भवज्वर की पीड़ा को नष्ट करो। तुम्हारे चरण-कमल चतुर्दश चराचरों के स्वामियों द्वारा प्रणम्य हैं। तुम मेरा चिरकाल से वांछित शुभ मुझे प्रदान करो, जिससे मुझ में (दिव्य) तेज का स्फुरण हो।

[२९]

हे शारदा ! पूर्णचन्द्र की रश्मिप्रभा की परम्परा से अवगाहित तुम्हारे मुख को जो कोई आधे क्षण तक भी देख लेता है उसके मुख कमल से ऐसी अप्रतिहत वाणी प्रकट होती है कि गङ्गा की भी निन्दा करने में समर्थ हो जाती है।

[२५]

त्वदध्वनि कृतस्थितेर्बुधजनस्य चेतोरिपूँ-
स्त्वदीयकरुणासिका ननु कदर्थयत्यञ्जसा ।
अतः स्थितमिदं त्वया निजजनो मुदा पाल्यते
मयि स्फुरति किं ततो जननि ! मे तटस्थायितम् ॥

[२६]

अजस्रमभिभूयतेऽव्यवसितं मनो निद्रया
जृणाति वपुरीर्ष्यया, कुमतिसङ्गतः सन्मतिः ।
न मे शिवकथारतिर्न च समाधियोगे गति-
स्त्वदभ्युपगमस्ततः स्पृशतु मां स्वतः शारदे ! ॥

[२७]

कलेवररुचा जिता तव सुवर्णशैलप्रभा
प्रशस्तमणिमौक्तिकावलिलसत्कुचे ! शारदे !
कृतासनपरिग्रहे ! सितमरालपीठे, कुरु
प्रमत्तमपि मादृशं मतिजिताऽमृतान्धोगुरुम् ॥

[२८]

भवज्वररुजं दृशा करुणया गिरां देवते !
विनाशय निशीथिनीपतिविजेतृसौम्यानने ! ।
चतुर्दशचराचराधिपनुताङ्घ्रिपङ्केरुहे !
शुभं दिश चिरेप्सितं स्फुरतु येन तेजो मयि ॥

[२९]

क्षणार्धमपि यः क्वचिद् विशदचन्द्ररश्मिप्रभाऽऽ-
वलीभिरवगाहितं कलयति त्वदीयं मुखम् ।
ततोऽप्रतिहतं गिरः प्रकटितास्तदास्याम्बुजात्
क्षमन्त इव जह्नुजामपि विनिन्दितुं शारदे ! ॥

[३०]

हे सरस्वती ! ब्रह्म मुहूर्त में निनादित, तुम्हारे चरणों के एक मणिनिर्मित नूपुर को ही हम वेदों की वाणियों का करण्डक समझते हैं। मेरा हृदय भवसागर से मुक्त करने वाली उस ध्वनि को पुरातन तपस्या का परिणाम-फल समझता है।

[३१]

कलि की अशुभ बुद्धि से मेरी समस्त इन्द्रियाँ मथित हैं। प्रभूत पाप-विष से मेरा बुद्धि-क्रम भी दूषित हो चुका है। इसलिए अब तुम्हारी कृपा-नौका का आश्रय लेता हूँ, जो पापनाशिनी है, भवसागर से पार करने वाली है तथा पुण्य को उत्पन्न करने वाली है।

[३२]

हे सरस्वती ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवताओं से तुम पूजित हो। तुम कोकिल की मधुर ध्वनि को भी तिरस्कृत करने में समर्थ वाणी को धारण करती हो। जो जड़ व्यक्ति सर्वथा निरक्षर है, वह भी यदि तुम्हारे मन्त्र का थोड़ा सा चिन्तन करता है तो वह निरर्गल प्रवाहित होने वाली वाग्धारा को प्राप्त कर लेता है।

[३३]

चन्द्रमा में विष के भ्रम से कहीं शंकर न पी जायें, क्या इसीलिए हिरण ने चन्द्रमा को छोड़ना चाहा था ? तुम्हारे चरण-कमल को भय तथा आर्ति से शून्य स्थान समझता हुआ ही क्या समस्त रोगों से रहित मृगछौना वहाँ रहने लगा था।

[३४]

हे माँ सरस्वती ! तुम्हारे में आश्रितचित्त जनों के पवन-चञ्चल चित्तों को तुम्हारी गुणमाला दृढ़ता से बाँध देती है। किन्तु वह बन्धन मुझे बड़ा ही अनोखा प्रतीत होता है क्योंकि वही निकृष्ट कर्मों से उत्पन्न होने वाले बन्धनों को तत्काल खोल देता है।

[३०]

क्वणन्तमिह नूपुरं मणिविनिर्मितं ते पदोः
करण्डकमतिप्रग्रे श्रुतिगिरां प्रतीमोऽनिशम् ।
पुरातनतपःफलं परिणतं गिरामम्बिके !
विभावयति मानसं भवविमोचकं तत्स्वनम् ॥

[३१]

कलेरशुभशेमुषीप्रमथितेन्द्रियग्रामको
भवामि दुरितावलीगरलदिग्धधीसंक्रमः ।
अतस्तव कृपातरीं दुरितनाशिनीं साम्प्रतं
भवाम्बुनिधितारणीं सुकृतकारिणीं संश्रये ॥

[३२]

विधातृगरुडध्वजस्मरहरादिदेवार्चिते !
दधासि पिकनिस्वनाभिभवनक्षमां भारतीम् ।
निरक्षरजडोऽपि यस्तव मनुं मनाक् चिन्तयेत्
स एव लभते निरर्गलगलद्वचोवैखरीम् ॥

[३३]

सुधाकरविषभ्रमादपि पिबेत् क्वचिच्छङ्करः
किमिन्दुमजिनप्रसूरथ जिहासयामास तम् ।
भयार्तिरहितं पदं तव पदाम्बुजं तर्कय-
न्नुवास मृगशावकः किमु निरस्तसर्वामयः ॥

[३४]

तवाम्ब ! गुणसन्ततिः पवनचञ्चलं मानसं
त्वदाश्रितहृदां नृणां दृढतरं प्रबध्नातकि ।
विचित्रमथ भाति मे जननि ! बन्धनं किन्तु तद्
विमोचयति बन्धनान्यपरकर्मजान्यञ्जसा ॥

[३५]

हे सरस्वती ! तुम अपने मुखचन्द्रमा की कान्ति-प्रभा के प्रवाह से समस्त स्वाश्रित जनों की अपराधराशि को नष्ट कर देती हो। जब तुम अपनी वीणा बजाती हो, उस ध्वनि को यदि मैं प्रातःकाल एक बार भी, तुम्हारे कृपा-कटाक्ष के मार्ग में आया हुआ, सुन लेता हूँ तो (तुम्हारी) स्तुति करने की विधि में समर्थ हो जाता हूँ।

[३६]

हे शारदा ! मेरी परिमित मति को तुम विकसित कर दो। मेरी पापराशि को जलाकर भस्म कर दो। मेरी बुद्धि कभी भी विपथ-गामिनी न हो। यदि तुम अपने हाथ में पकड़ी हुई अमृतकलशी की सुधा को किसी प्याले की कोर के एक कोण से भी पिला देती हो तो मन्द-मति भी तत्काल गुरुाचार्य के समान आचरण करने लगता है।

[३७]

तुम्हारी केश-मेघमाला से तुम्हारा मुख-चन्द्र घिरा हुआ है। हम उसको निश्चित अन्धकार-नाशक किसी दूसरे चन्द्रमा के समान मानते हैं। यह अपनी विशद किरणों से पाप-मेघ का नाश करता हुआ, विद्वज्जनों के नेत्र-चकोरों को प्रसन्न करता हुआ, तुम्हारे चरणों में प्रणत मुझे भी प्रसन्न करे।

[३८]

हे सरस्वती ! तुम्हारा न आदि है और न अन्त है। अर्थात् तुम अनादि तथा अनन्त हो। तुम पद-पदार्थ-स्वरूपिणी हो। स्तुति की जाने पर तुम शीघ्र ही अन्धमति को भी कवियों में नरेन्द्र के तुल्य कीर्ति प्रदान कर देती हो। कोई जड़मति भी यदि तुम्हारे चरण-कमल के पराग की अन्तर्हृदय में स्तुति कर लेता है तो विद्वत्परिषद् में व्यथा को प्राप्त नहीं करता।

[३९]

हे माँ सरस्वती ! तुम अपने वाहन (हंस) को दूध तथा पानी अलग-अलग करने में लगाती हो और अपनी वाणी को सदसत् के भेदयज्ञ में प्रयुक्त करती हो। तुम्हारे विषय में यह प्रसिद्ध है कि तुम अपने परिकर के वैशिष्ट्य की आशा से प्रतिक्षण विलक्षण प्रयोग करती हो। इसीलिए हम तुमको प्रणाम करते हैं।

[३५]

निनादयसि वल्लकीं यदि मुखेन्दुकान्तिप्रभा-
प्रपूरविधुताखिलाश्रितजनापराधोच्चये ! ।
शृणोमि यदि तं ध्वनिं सकृदपि प्रगे ते कृपा-
कटाक्षपथमागतः स्तवविधौ भवामि प्रभुः ॥

[३६]

विकासय मितां मतिं दह दहाघराशिं मम
न मे भवतु शारदे ! विपथगामिनी भारती ।
करस्थकलशीसुधां चषकसृक्ककोणेन चे-
न्निपाययसि मन्दधीरपि तदाशु काव्यायते ॥

[३७]

तवाननसुधाकरं चिकुरमेघमालावृतं
सुधांशुमपरं ध्रुवं तिमिरनाशकं मन्महे ।
नुदन्नघघनं स्वकैर्विशदरश्मिभिः प्रीणयन्
सुधीक्षणचकोरकं, पदनतं स मां प्रीणयेत् ॥

[३८]

अनादिनिधना स्तुता पदपदार्थरूपा द्रुतं
त्वमन्धमतयेऽप्यहो कविनरेन्द्रकीर्तिप्रदा ।
न कोऽपि जडधीः सुधीपरिषदि व्यथामाप्नुयात्
स्तवीति तव चेत् पदाम्बुजपरागमन्तर्हृदि ॥

[३९]

नियोजयसि वाहनं जलपयोविवेकक्रमे
वचश्च जननि ! स्वकं सदसदोर्विभेदाध्वरे ।
इति प्रथितमस्ति ते परिकरे विशेषाशया
प्रतिक्षणविलक्षणं व्यवसितं ततस्त्वां नुमः ॥

[४०]

हे परा सरस्वती ! त्रिभुवन के अनोखापन तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व को दिखाने की इच्छा से ही क्या तुमने शिखी (मयूर) का आश्रय लिया है ? हे अम्बा ! तुम्हारी चाल मोरनी के समान है। क्या इसीलिए सद्वाणी से प्रशंसनीय शिखियों (ब्राह्मणों) में श्रेष्ठ शिखी (अग्नि) में हवन करते हैं।

[४१]

यदि कोई जड़ व्यक्ति भी सुधाकलश, पुस्तक, (स्फटिक-) मणिमाला तथा श्वेत वस्त्रों को धारण करने वाली शारदा का चिन्तन करता है तो उनके मुखारविन्द से वाणी का प्रवाह तत्काल उसी प्रकार बहने लगता है जैसे सुवर्ण-घट में स्थित मधुमय पेय।

[४२]

तुम दयासुधा की सागर हो। यदि मुझे पापी जानकर परित्याग करना चाहती हो, तो सुखपूर्वक शीघ्र परित्याग कर दो, यह उचित ही है। फिर भी इतना तो हृदय में शीघ्र विचार करना कि मुझ जैसे अनाथ तथा महान् अपराधी की तुम्हारे बिना कौन रक्षा करेगा ?

[४३]

तुम्हारे में निरन्तर अनुरागवान् मुझ जैसे व्यक्ति को भी क्या तुम भक्ति में दृढ़ता से शून्य समझकर छोड़ना चाहती हो ? हे माँ सरस्वती ! यह भी युक्त नहीं है। तुम राजराजेश्वरी हो, तुम्हीं ने चञ्चल-चित्त को पवन का बन्धु बनाया है।

[४४]

जब कभी तुम्हारी वीणा सामगान करती है तो उसी समय मेरे कर्मों का अशुभ सञ्चय नष्ट हो जाता है। चित्त में कोई निर्मल ज्ञान का समुद्र प्रकट हो जाता है और जो मोह को उत्पन्न करने वाले घनान्धकार के पुञ्ज नष्ट कर देता है।

[४०]

जगत्त्रितयचित्रतामथ च सद्द्विजत्वं मुदा
दिदर्शयिषुरेव किं शिखिनमाश्रयस्त्वं परे ! ।
तवाम्ब ! शिखिसन्निभा गतिरितीव किं सद्वचः-
प्रशस्यशिखिनां वराः शिखिनि होममातन्वते ॥

[४१]

जडोऽपि यदि चिन्तयेद् धृतसुधाघटीपुस्तिकां
गृहीतमणिमालिकां सिततराम्बरां शारदाम् ।
तदास्यसरसीरुहात् प्रवहति द्रुतं वाक्ततिः
सुवर्णघटसंस्थितं मधुमयं यथा पानकम् ॥

[४२]

विचार्य यदि पापिनं परिजिहीर्षसि त्वं दया-
सुधाजलनिधे ! सुखं परिहराशु युक्तं हि तत् ।
परं तु हृदि चिन्तय द्रुतमिदं क आरक्षये-
दनाथमिह मादृशं कृतमहागसं त्वां विना ॥

[४३]

जिहाससि निरन्तरं त्वयि धृतानुरागं जनं
विमृश्य किमु मादृशं सुदृढतरविहीनं रतौ ।
अयुक्तमिदमप्यहो जननि ! राजराजेश्वरि !
त्वयैव चलचित्तताऽनिलशरीरबन्धूकृता ॥

[४४]

यदा तव विपञ्चिका ध्वनति सामगानं क्वचित्
तदैव मम कर्मणामशुभसञ्चयः क्षीयते ।
स्फुटीभवति निर्मलो मनसि कोऽपि बोधार्णवो
घुनात्यथ स मोहजं घनतमं तमःस्तोमकम् ॥

[४५]

हे सरम्वती ! जो इस संसार मे वेदवाणी के शिरोभूषण रूप तुम्हारे चरण-कमल को निरन्तर हृदय मे धारण करते है, वे चिरकाल तक देवलोक मे निवास करते है। देवाङ्गनाएँ चचल चँवर (उनके दोनो तरफ) डुलाती है और प्रशमनीय गुणो के समूहो से उनकी कीर्ति का विस्तार होता है।

[४६]

हे शारदा ! तुम चराचर जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय की स्वामिनी हो। जब मैं समस्त सम्पदायो के आस्पद तुम्हारे चरणो को हृदय मे (ध्यान मे) धारण करता हूँ, तब वह प्रतिपल विचित्र तेज मुझ मे विलास करे, जिसको यम-नियम का पालन करने वाले योगी चिरकाल के बाद समाधि मे हृदय मे धारण करते है।

[४७]

तुम्हारे दाहिने हाथ मे घूमती हुई, अमृत के सरस यन्त्र के समान चञ्चल स्फटिक-माला का मै हृदय मे ध्यान करता हूँ और तुम्हारे बाये हाथ मे विद्यमान ज्ञानसागर से निकले हुए अरुणवर्ण सूर्य की रश्मिप्रभा के तुल्य प्रवाल की वर्ण वाली पुस्तक को हृदय मे धारण करता हूँ।

[४८]

वह (अनिर्वचनीय) वेदचतुष्टयी भी तुम्हारी विभूति का पार नही पा सकी। आगमो के शुभ गण भी तुम्हारे गुणो को गिनने मे समर्थ नही है। ऐसा सुना है कि कवियो मे श्रेष्ठ कवि भी तुम्हारी दृष्टिपात से उत्पन्न गौरव से ही अपनी वाणी का व्यवहार करते है। अत मै तुम्हारे कटाक्ष का आश्रय लेता हूँ।

[४९]

हे सरस्वती ! तुम पृथ्वी पर देवराज इन्द्र की कामधेनु के समान हो। जब तुम्हारी कृपाझरी मेरे कानो मे प्रतिदिन प्रात.काल अमृत टपकाती है, तब मेरी मति कलुषित प्रवृत्ति को छीन लेती है और मेरी शुद्ध बुद्धि को शीघ्र ही आनन्दसागर मे डुबो सी देती है।

[४५]

धियन्ति भुवि ये हृदा श्रुतिगिरां शिरोभूषणं
त्वदीयपदपङ्कजं कमलजप्रिये ! सन्ततम् ।
चरन्ति विबुधालये सुरवधूचयैर्वीजिताः
प्रशस्यगुणसंहतिप्रथितकीर्तयस्ते चिरम् ।।

[४६]

चराचरजगत्सृतिस्थितिलयप्रभो ! शारदे !
दधामि हृदये यदा तव पदं पदं सम्पदाम् ।
तदाशु लसतान्मयि प्रतिपलं विचित्रं महो
यदेव यमशालिनो दधति सत्समाधौ हृदि ।।

[४७]

तव स्फटिकमालिकां हृदि करोमि, सव्येतरे
करे परिवृतां सुधासरसयन्त्रवच्चञ्चलाम् ।
प्रबोधजलसागरादरुणभानुरश्मिप्रभा-
प्रवालमिव पुस्तकं तव करे च सव्ये मुदा ।।

[४८]

न सा श्रुतिचतुष्टयी तव विभूतिपारं गता
न वाऽऽगमगणः शुभो गणयितुं क्षमस्ते गुणान् ।
श्रुतं 'कविवरा' अपि व्यपदिशन्ति वाचं तवे-
क्षणप्रभवगौरवादिति भजे कटाक्षं तव ।।

[४९]

यदा तव कृपाझरी श्रुतिपुटे मदीये सुधां
क्षरत्यनुदिनं प्रगे भुवि सुरेन्द्रधेनूपमे ! ।
तदा विजयते मतिः कलुषितां प्रवृत्तिं निम-
ज्जयेदिव सुखाम्बुधौ त्वरितमेव शुद्धां मम ।।

[५०]

हे शारदा ! जड़ व्यक्ति तुम्हारे ज्ञान से मूढता को पार कर जाता है, यही कहने के लिए चारों वेद स्पष्ट रूप से प्रवृत्त हैं। कपट-रुदन से भी किया हुआ तुम्हारा गुणानुवाद क्या समाधि-सम्पादिनी सम्पत्ति का ज्ञान नहीं कराता ?

[५१]

पुराणों ने तुम्हारे नामकीर्तन को ही पापनाश के लिए पर्याप्त बताया है। हे सरस्वती ! वह कथन अतिशयोक्तिपरक नहीं है। इसलिए मेरे महापातकों को नष्ट करने के लिए मेरा तुम्हारी गुणावली पर आश्रित मन प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति का गान करना चाहता है।

[५२]

जब मेरे नेत्र तुम्हारे तैजस रूप का साक्षात्कार करते है, तब मेरा पाप कर्म से उत्पन्न अन्धकार नष्ट हो जाता है। जब तुम्हारा कृपापूर्ण मन मेरे प्रति प्रफुल्लित हो जाता हैं, तब तुम्हारी वाणी का रस मेरी कर्ण-युगली को तत्काल पवित्र कर देता है।

[५३]

जब तुम्हारा कान्ति से भास्वर विग्रह मेरे नेत्र-पथ मे आ जाता है, तब पापान्धकार उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य की प्रभा से अन्धकार। जो प्रगल्भ कुबुद्धि कभी भी तुम्हारी पूजा नही करता उसके घर मे आनन्द-चन्द्र से उत्पन्न कान्ति नही फैलती।

[५४]

यह विषय वासना एक चतुर पिशाचिनी है जो बार-बार मेरे मन को तुम्हारे चरण-कमल से दूर खीचती रहती है। तुम एक बार अपने अपाङ्गपात से उस छलिनी को नष्ट कर दो. जिससे मेरी चिति हमेशा तुम्हारे अनुचिन्तन मे कीलित हो जाय।

[५०]

जडोऽपि तव संविदा तरति शारदे ! मूढता-
मिति श्रुतिचतुष्टयी कथयितुं प्रवृत्ता स्फुटम् ।
गुणानुगुणवर्णना कपटरोदनेनापि किं
न बोधयति संपदं तव समाधिसम्पादिनीम् ? ।।

[५१]

अघापहमलं तवाह्वयपदानुवादं जगौ
पुराणनिवहो, न सास्त्यतिशयोक्तिगीर्तिगिरे ! ।
अतः प्रतिदिनं मम क्षपयितुं महापातकं
जिगासति मनः स्तवं तव गुणावलीसंश्रयम् ।।

[५२]

यदा मम दृशा वपुस्तव निरीक्षते तैजसं
तदा क्षयति पूर्णतः कलुषकर्मजं मे तमः ।
प्रफुल्लति यदा मनस्तव मयि प्रसादान्वितं
तदा तव वचोरसः श्रुतियुगं पुनीते मम ।।

[५३]

यदेक्षणपथं गतं तव वपुः प्रभाभास्वरं
तदाघतिमिरं क्षणिष्यति तमो यथाऽर्कप्रभा ।
न पूजयति योऽधमस्तव पदं प्रगल्भः कुधी-
र्न तस्य सदने प्रभा प्रसरति प्रमोदेन्दुजा ।।

[५४]

इयं विषयवासना पटुपिशाचिका मन्मनो
विकर्षति पुनः पुनस्तव पदाम्बुजातात् पृथक् ।
जहि त्वमुरुमायिनीं सकृदपाङ्गपातेन तां
यथा मम मनः सदा त्वदनुचिन्तने सज्जतु ।।

[५५]

इस संसार में यदि सौ कुपुत्र भी हों तो सुखी करने में समर्थ नहीं होते। कौरव पुत्र के सौ पुत्र इसमें सुदृढ़ प्रमाण हैं। उपाधि से प्रेम करने वाले से सदा सुख मिल सकता है? इसलिए तुम्हारे निरुपाधिक कृपा सुख को चाहता हूँ।

[५६]

मेरे दोनों पैरों ने तुम्हारी प्रदक्षिणा तथा तुम्हारी चरण-सेवा के लिए प्रतिज्ञा कर ली है और हाथों की अञ्जलि ने तुम्हे प्रणाम करने के लिए प्रतिज्ञा कर ली है। मेरा अन्तरवपु समाधि की प्रक्रिया का प्रणिधान करता रहता है। अब इनके आगे केवल तुम्हारी शुभाशीष् को छोड़कर और क्या चाहिए।

[५७]

मैं समस्त विषयो की निःसारता को अच्छी तरह जानता हूँ। तथापि पूर्वकर्मों की गति से मेरा मन इनमे फँसता रहता है। मैं जड़शिरोमणि हूँ। तुम चिद्घनानन्दिनी हो। इसलिए मेरे मन को विषयवासना से हटा दो।

[५८]

कहाँ तो मैं मोघमति और कहाँ विदेहमुक्ति? फिर भी भवसागर से पार जाने की मेरी इच्छा को कोई न हँसे। क्योकि यदि इस संसार में तुम्हारा एक भी कृपाकण उस पर गिर जाता है तो कोई भी लोकोत्तर कल्याण दुर्लभ नही रहता।

[५९]

हे शारदा! यहाँ निरन्तर विपत्तियो से असन्तुष्ट व्यसनसागर में गिरते हुए और सांसारिक पीड़ा से पीड़ित मुझ जैसे व्यक्ति की रक्षा के लिए यदि तुम्हारे कृपा-कटाक्ष का उपक्रम नही होता तो मेरा भवसागर का उल्लघन कैसे हो सकेगा।

[५५]

कुपुत्रशतमप्यहो सुखयितुं न लोके क्षमं
पुरः कुरुमहाकुले सुतशतं प्रमाणोत्तमम् ।
उपाधिसहितेन किं प्रणयिना सुखं लभ्यते
उपाधिरहितं ततस्तव कृपासुखं काम्यते ॥

[५६]

प्रदक्षिणविधौ पदे तव पदाब्जसेवाक्रमे
प्रतिश्रुतवती युतिर्नमनपद्धतौ हस्तयोः ।
अथ प्रणिदधाति मेऽन्तरवपुः समाधिक्रमे
परं किमत इष्यतां तव विना शुभामाशिषम् ॥

[५७]

अशेषविषयेष्वहं परिचिनोमि निःसारतां
तथापि गतकर्मणां गतिवशान्मनः सज्जि मे ।
अहं जडशिरोमणिस्त्वमसि चिद्घनानन्दिनी
निवर्तय ततो मनो विषयवासनातो मम ॥

[५८]

क्व मोघमतिकोऽस्म्यहं क्व च विदेहमुक्तिः परा
तथापि भवसागरात्तितरिषा न मे हस्यताम् ।
दुरापमिह नास्ति यत् किमपि शर्म लोकोत्तरं
पतेत् तव कृपालवो जननि ! यत्र तस्मै सृतौ ॥

[५९]

विपद्भिरिह सन्ततं व्यसनसागरेऽरुन्तुदे
पतन्तमपि मादृशं भवरुजान्वितं शारदे ! ।
न रक्षितुमुपक्रमस्तव कृपाकटाक्षस्य चेद्
भविष्यति तदा कथं मम भवार्णवोल्लङ्घनम् ? ॥

[६०]

मैं अनेक विघ्नों से युक्त हूं। मलिन बुद्धि वाला हूं। प्रकृति से ही दुष्ट हूं। स्वयं अपने जनों के प्रति भी विपरीत भाव को प्राप्त करता रहता हूं। मैं दुःखों में डूबता रहता हूँ और भाग्य भी मेरे विरुद्ध रहता है। मेरे मस्तक पर तुम्हारा प्रिय कृपारस कब सिंचित करोगी ?

[६१]

हे सरस्वती ! कहाँ तो मेरी अतिशय निष्ठुर वृत्ति और तुम्हारी स्तुति के लिए मधुर वाणी ? कहाँ तो मेरी परिमित बुद्धि और कहाँ तुम्हारी दिव्यातिदिव्य कलाएं ? फिर भी यदि तुम्हारे करुणा-समुद्र के शीतल कण मेरे हृदय में नहीं गिरते तो (तुम्हारी) स्तुति कैसे सम्भव होगी ?

[६२]

कुत्सित इन्द्रियाँ और कुत्सित वासनाएँ मृगमरीचिकाएँ हैं। इनके झुण्ड के झुण्ड आनन्द के अभाव से अथवा आनन्दाभास से वृथा ही सुख के मनोरथों का विस्तार करते रहते हैं। तुम्हारे कटाक्षपात से वे ही प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर अन्तःकरण में आनन्द सरोवर के समान वेग से शान्ति के सुख का विस्तार करते रहते हैं।

[६३]

हे वाग्देवता सरस्वती ! समस्त देवगण तुम्हें प्रणाम करते हैं। मेरा चित्त मेरे अनन्त पापों को वर्णन करने मे असमर्थ है। तुम्हारे सामने मेरा अन्तर मन लज्जित सा है। हे माँ ! फिर भी तुम्हारी करुणा ही तुम्हारी स्तुति के लिए प्रवृत्त मुझे विलक्षण वाणी के क्रम में प्रवृत्त करती रहती है।

[६४]

हे सरस्वती ! इस जगत् मे यमादि का पालनकर्ता समाधिस्थ व्यक्ति जिस निरंजन, चञ्चल तथा भवसागर से मुक्ति दिलाने वाले तेज का चिन्तन करना चाहता है, अनेक जन्मों से प्रवृद्ध व मलिन अन्धकार (अविद्यान्धकार, अज्ञानान्धकार तथा मोहान्धकार) के नाशक उसी तुम्हारे भास्वर तेज को मेरा कोई अनिर्वचनीय मन साक्षात् प्रत्यक्ष कर लेता है।

[६०]

उपप्लवयुते मलीमसमतौ प्रकृत्या खले
स्वतो हि विपरीततां गतवति स्वकीये जने ।
उतार्तिषु निमज्जतो मम विरुद्धभाग्यस्य हा
कदा नु शिरसि प्रियं तव कृपारसं स्यन्त्स्यसे ? ।।

[६१]

क्व वृत्तिरतिनिष्ठुरा स्तवविधौ क्व मिष्टं वचः
क्व मे परिमिता मतिः क्व तव दिव्यदिव्याः कलाः ।
तथापि करुणोदधेस्तव न शीतलाः शीकराः
पतन्ति मम मानसे कथमथ स्तुतिः संभवेत् ।।

[६२]

कदिन्द्रियकुवासनामृगमरीचिकानां व्रजा
अनिर्वृतिवशाद् वृथा सुखमनोरथांस्तन्वते ।
त एव हृदये मुदा तव कटाक्षतः सन्ततं
तडाक इव निर्वृते शमसुखत्वमातन्वते ।।

[६३]

अनन्तदुरितानि मे कथयितुं न चेतः क्षमं
विलज्जितमिवान्तरं तव पुरो गिरां देवते ।
तथापि करुणाम्ब ते व्यवसितं स्तवे मां स्फुरद्-
विलक्षणवचःक्रमे वितनुते नुते दैवतैः ।।

[६४]

निरञ्जनमचञ्चलं भवविमोचकं यन्मह-
श्चिचिन्तिषति तावकं भुवि यमी समाधौ स्थितः ।
अनेकजनिसंभृताऽऽविलतमोपहं भासुरं
महः किमपि तावकं जननि मन्मनः पश्यति ।।

[९५]

हे भारती ! इस संसार मे तुम्हारे चरण-कमल से निकलते हुए अमृत के प्रवाह से बढ़ी हुई सम्पत्तियाँ निर्धनता-रूपी निविड़ अन्धकार-राशि को नष्ट कर देती है। इसीलिए मैं भी तुम्हारे चरणों का चिन्तन करता हूँ। तुम ही स्वयं मुझ जैसे परमदरिद्र (भक्तिहीन) व्यक्ति के प्रति भगवती महालक्ष्मी को आदेश दो।

[९६]

हे वाग्देवता ! कामदेव के बाण रूप समस्त शत्रुओं को जीतकर, समस्त पाप-समूह को छोड़कर तथा आद्य अविद्यान्धकार का परित्याग करके, समस्त शुभ सम्पत्तियों के मार्ग में पैर रखने के लिए मैं अत्यन्त आदर के साथ तुम्हारी चरणरेणु का भजन करता हूँ।

[९७]

जो व्यक्ति चारों हाथों में स्फटिक माला, वीणा, प्रशस्त पुस्तक तथा दिव्य शुकी को धारण करने वाली और वेदवाणी से स्तुति की जाने वाली (भगवती सरस्वती) को हमेशा हृदय में धारण करता है, उसको यह तत्काल धाराप्रवाह वाणी वाला बना देती है।

[९८]

जो व्यक्ति कल्पवृक्ष की शुभ मंजरी का कर्ण-भूषण पहनने वाली, मधुर-मधुर निनादित वीणा की ध्वनि से दुःखसागर का पान करने वाली, ब्रह्मा के मन का भी वशीकरण करने मे चतुर तथा शुभ इस (सरस्वती) को हृदय में धारण करता है, वह व्यक्ति कवीन्द्र के समान आचरण करने लगता है।

[९९]

जब भी कोई रसज्ञहृदय (रसिक) परिस्फुरित अनन्तानन्त भावों वाले नये-नये स्तोत्रों से कृपा के भाव से तरङ्गित (भगवती) सरस्वती को प्रसन्न करेगा, तब पुण्य से भी दुर्लभ तथा सज्जनों द्वारा वांछित श्रेष्ठ कीर्ति को संसार में प्राप्त करेगा। जिस (कीर्ति) के लिए साक्षात् देवगुरु बृहस्पति भी चिरकाल तक आकांक्षा करते रहते है।

[६५]

भवन्ति भुवि निःस्वताघनतमीक्षये सम्पद-
स्त्वदङ्घ्रिसरसीरुहोद्गतसुधाप्रसारोच्चिताः ।
अनेन परिचिन्त्यते तव पदं ततो भारति !
त्वमेव दिशताच्छ्रियं परमदुर्गते मादृशे ॥

[६६]

विजित्य निखिलान् द्विषः स्मरशरस्वरूपानहं
विसृज्य दुरितव्रजं परिविहाय चाद्यं तमः ।
समस्तशुभसम्पदां पथि पदं निधातुं गिरा-
मधीश्वरि ! भजे भवच्चरणरेणुमत्यादृतः ॥

[६७]

कराम्बुजचतुष्टये स्फटिकमालिकां वल्लकीं
प्रशस्ततमपुस्तकं श्रयति याऽथ दिव्यां शुकीम् ।
दधाति हृदि तां सदा श्रुतिवचःप्रगीतां तु यः
करोति तमियं द्रुतं विनिसरद्वचःप्रस्रवम् ॥

[६८]

सुरद्रुशुभमञ्जरीरचितकर्णपूरां शुभां
कलक्वणितवल्लकीध्वनिनिपीतदुःखोदधिम् ।
पितामहमनोवशीकृतिविधौ विदग्धामिमां
दधाति हृदयेन यः स हि जनः कवीन्द्रायते ॥

[६९]

रसज्ञहृदयो यदा स्फुरदनन्तभावैर्गिरं
कृपाभरतरङ्गितामभिनवैः स्तवैः प्रीणयेत् ।
तदा सुकृतिदुर्लभं सुजनवाञ्छितं सद्यशो
लभेत भुवि, यत्कृते सुरगुरुश्चिरं काङ्क्षति ॥

[७०]

हे शारदा ! तुम्हारे चरणारविन्द के स्मरण से पुण्यात्मा व्यक्ति गुणों से परिपुष्ट बुद्धि के परिणाम को स्पष्ट रूप से प्राप्त कर लेता है और उसका मुखारविन्द, तुम्हारे नूपुरों की ध्वनि के निनाद की लीला के समान, वाणी की निकलती हुई शब्दावली को धारण करता है।

[७१]

हे शारदा ! पुलस्त्यपुत्र रावण तथा दशरथपुत्र भगवान् श्रीरामचन्द्र दोनों ने ही तुम्हारी पूजा की थी किन्तु दोनो को फल मे भेद प्राप्त हुआ। तुम तो समान फल प्रदान करने वाली हो, तथापि उन दोनो की (फल-) सिद्धि मे भेद हुआ। (इसका कारण दोनों का अपना-अपना अधिकार भेद ही है)। क्योंकि क्या गन्ने तथा विष-वृक्ष में गुण-भेद वृष्टि से उत्पन्न होता है ?

[७२]

हे सरस्वती ! जब कही कोई बुद्धिमान् तुम्हारा कृपापात्र बन जाता है, तब उसकी जिह्वा काव्यलीला की भूमि बन जाती है। यदि ऐसा नही होता तो प्रतिदिन ब्रह्मा के मुखकमल से अनोखी वेदध्वनि-सरस्वती कैसे निकलती ?

[७३]

यदि भवबन्धन को काटने वाली, पापशून्य, सुधारस का तिरस्कार करने वाली तुम्हारी स्तुति-कथात्मक सज्जन-सूक्तियाँ हृदय का स्पर्श कर लेती है, तब फिर मन नयी-नयी स्त्रियो तथा नश्वर सुख से विरक्त हो जाता है और मुक्तपाश के तुल्य पिघल जाता है।

[७४]

हे माँ सरस्वती ! यदि कभी किसी विषयी व्यक्ति का भी मूढ मन चन्द्र-किरण के समान शीतल तथा तमोगुण (अज्ञानान्धकार व अविद्यान्धकार) के प्रकर्ष को नष्ट करने वाली तुम्हारी स्तुतियो को सुन लेता है, तब मोक्ष को प्राप्त कर लेने वाला उसका मन अनायास ही उपलब्ध बादलो की गर्जना से चकित स्त्रियों के आलिंगन को छोड़ देता है।

[७०]

त्वदीयपदपङ्कजस्मरणलब्धपुण्योऽम्बिके !
गुणैरुपचितां मतेः परिणतिं स्फुटामश्नुते ।
तथा च मुखपङ्कजं विनिसरद्वचोवैखरीं
बिभर्ति तव नूपुरध्वनिनिनादलीलामिव ॥

[७१]

पुलस्त्यतनयस्तथा दशरथात्मजः शारदे !
तवार्चनरतावुभौ फलमलब्धभेदं तयोः ।
समानफलदायिनी त्वमथ सिद्धिभेदो द्वयोः
किमिक्षुविषवृक्षयोर्गुणविपर्ययो वृष्टिजः ? ॥

[७२]

सरस्वति ! सुधीः क्वचित्तव भजेत् कृपापात्रतां
तदीयरसनास्थली भवति काव्यलीलावनी ।
न चेत् प्रतिदिनं कथं नलिनसंभवस्याद्भुता
श्रुतिध्वनिसरस्वती वदनपङ्कजान्निःसरेत् ? ॥

[७३]

स्पृशन्ति यदि मानसं भवभिदः सतां सूक्तय-
स्तव स्तुतिकथाः सुधारसमुचो निरस्तांहसः ।
विरज्यति मनो द्रुतं नवनवाङ्गनाभ्यस्तथा
विनश्वरसुखादपि, द्रवति मुक्तपाशोपमम् ॥

[७४]

सुधांशुरुचिशीतलाः क्षततमःप्रकर्षाः स्तुतीः
श्रृणोति यदि ते क्वचिद् विषयिणोऽपि मूढं मनः ।
जहाति घनगर्जनस्तिमितयोषिदालिङ्गनं
सुखोपनतमप्यहो जननि ! लब्धनिःश्रेयसम् ॥

[७५]

हे माँ ! जब तक वृद्धावस्था से जर्जर मेरा शरीर बिल्कुल क्षीण नहीं हो जाता, जब तक अति सम्भ्रम मेरे प्रबुद्ध मन को भ्रमित नहीं कर देता, जब तक (सांसारिक त्रिविध) ताप मेरी भ्रमित बुद्धि को व्यथित नहीं कर देते, तब तक मेरा मन तुम्हारी स्तुति का आलम्बन करे।

[७६]

हे वागीश्वरी सरस्वती ! तुम्हारी स्तुति से विस्तृत सम्पत्ति वाली जिसकी वाणियाँ सज्जनों (भक्तों) के हृदय का हरण करती है, वही व्यक्ति इस संसार में धन्य होता है। फिर उसकी वाणी से तत्क्षण इन्द्रपुरी की स्त्रियों के मनोहर गीत पराजित से हो जाते हैं।

[७७]

हे मतिदा सरस्वती ! भगवान् के मत्स्यावतार तथा कच्छपावतार के रूपों को धन्य होने के लिए क्रमशः तुम्हारे नयनों तथा चरणों में स्थान ग्रहण करने वाले देखकर, तथा चक्रवाक युगली को तुम्हारे स्तनों के रूप में देखकर, तुम्हारे से वंचित विचारा पक्षि-राज गरुड़ निरन्तर अपना सिर धुनता रहता है।

[७८]

हे वाणी ! मोहान्धकार तथा अज्ञानान्धकार की प्रचुरता से निबिड बड़े-बड़े जंगलो के दावानल की ज्वाला तथा अग्नि की लपटों से बढ़े हुए सांसारिक दुःखों से मेरा मन व्याकुल रहता है। इसलिए अब मेरा मन हिमसलिल की झरी की वर्षा करने वाले तुम्हारे दिव्य मुखचन्द्र में डूब जाय, जो (मुखचन्द्र) क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न मधुर अमृत-निस्यन्द की माधुरी का पुञ्ज है।

[७९]

हे माँ सरस्वती ! चन्दन-निस्यन्दपंक से चारों तरफ फैलने वाली लहर को, चन्द्र-किरण के प्रसव को, शीतल अमृत की धारा को और हिमालय की झरी को भी धर्षित करने वाले तुम्हारे लोचन का स्मरण करके, नाना प्रकार के विकारों तथा व्यसनों में फँसा हुआ और (पंच) क्लेशों से संतप्त हृदय वाला यह तुम्हारा बालक कब अपनी अन्तराग्नि को शान्त करेगा ?

[७५]

न यावदपचीयते मम वपुर्जराजर्जरं
न यावदतिसंभ्रमो भ्रमयति प्रबुद्धं मनः ।
न यावदुपतापनं व्यथयति भ्रमन्तीं मतिं
मनो मम तव स्तुतिं जननि ! तावदालम्बताम् ॥

[७६]

सरस्वति ! तव स्तुतिप्रथितसम्पदो यद्गिरो
हरन्ति हृदयं सतां भुवि स एव धन्यो जनः ।
पुरन्दरपुरीवधूगणसुचारुगीतं ततः
पराजितमिव द्रुतं भवति तस्य वाग्भिः क्षणात् ॥

[७७]

मात्स्यं काच्छपमित्यदो भगवतो रूपद्वयं ते दृशोः
पादाम्भोजयुगे कृतस्थिति मुदा धन्यात्मतालब्धये ।
वक्षोजात्मतया च वीक्ष्य मतिदे ! सच्चक्रवाकद्वयं
मूर्धानं धुनुतेतरां खगपतिस्त्वद्वञ्चितः सन्ततम् ॥

[७८]

मोहाज्ञानान्धकारप्रचुरघनमहावन्यकादाववह्नि-
ज्वालाकामानलार्चिःप्रसृतभवसुखव्याकुलं मानसं मे ।
वाणि ! क्षीराब्धिमन्थोद्भवमधुरसुधास्यन्दमाधुर्यपुञ्जाऽऽ-
स्येन्दौ दिव्ये त्वदीये हिमसलिलझरीवर्षुके मग्नमस्तु ॥

[७९]

पाटीरस्यन्दपङ्कप्रसृमरलहरीं, प्रस्रवं चन्द्ररश्मे-
र्धारां सौधीञ्च शीतां तुहिनगिरिझरीं धर्षयल्लोचनं ते ।
स्मृत्वा नानाविकारव्यसनमुपगतः क्लेशसंतप्तचेता
हे वाणि ! स्यात् कदाऽसावपि तव शिशुकः शीतलान्तःकृशानुः ॥

[८०]

हे वागीश्वरी सरस्वती ! क्षीरसागर में शेषनाग पर सोने वाले भगवान् वैकुण्ठ विष्णु की नाभि से प्रकट दिव्य कमल पर उत्पन्न प्रजापति ब्रह्मा के हृदय-कमल के लिए तुम सूर्य-प्रभा के समान हो । जो तुम्हारे चरण-सूर्य के प्रकाश का साक्षात्कार कर लेता है उसके अज्ञानान्धकार का नाश करने के लिए सूर्य की कान्ति के समान बुद्धि अंगड़ाई लेने लग जाती है ।

[८१]

जो वैराग्यवान् पुरुष मन, वचन, शरीर तथा इन्द्रियों द्वारा तुम्हारे चरणों में अवनत होकर जन्मजन्मार्जित समस्त पाप सञ्चय नष्ट कर लेता है, उसका धर्म तथा उसकी कीर्ति नित्य बढ़ती रहती है और कामवासना के विकारों से परिवर्धित शरीर वाला उसका दुष्कर्म-शत्रु शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

[८२]

जो व्यक्ति मन्त्रों द्वारा तथा कपूर व कुंकुम से युक्त पत्रों द्वारा मणियों से चमकते हुए श्रीयन्त्र तथा कूर्मयन्त्र पर विराजमान तुम्हारी एक क्षण तक भी सहसा पूजा कर लेता है, उस धन्य व्यक्ति को तुम्हारा मांगलिक दृष्टिपात मन्त्रोच्चारण करते ही कोयल की कूक के समान प्रिय वाग्विन्यास की मधुरता से दक्ष कवि बना देता है ।

[८३]

हे शारदा ! तुम अपने भक्तों के पाप नाश करने मे निपुण हो । जो व्यक्ति भक्ति से समाराधित तुम्हारे चरणों को प्रसन्नतापूर्वक प्रतिदिन वर्णन करता रहता है, तुम उसकी पापराशि को सहसा नष्ट कर देती हो और उस पर प्रसन्न होकर तत्काल किसी (अनिर्वचनीय) परा विद्या को धारण करने वाली बुद्धि का विस्तार करती हो ।

[८४]

हे वरदा सरस्वती ! तुम्हारे करुणा-प्रसार के प्रसाद से चमत्कृत पाण्डित्य वाला जो (विद्वान्) आत्मा की चित्कलारूपिणी तुमको भलीभाँति विशद करना चाहता है, वह शुद्ध मति वाला पुरुष शीघ्र ही धन्य हो जाता है और उसके मुख से निकलने वाले स्तोत्रसुधासरोवर के रसोल्लास में मुक्ति स्वयं हंसिनी के समान आचरण करने लगती है ।

[८०]

गोक्षीराम्बुधिशेषशायिभगवद्दैकण्ठनाभीलसद्-
दिव्याब्जप्रभवप्रजापतिमनःपाथोजभानुप्रभे ! ।
हे वागीश्वरि ! यस्त्वदीयचरणाऽऽदित्यद्युतिं वीक्षते
तस्याज्ञानतमो विनाशरविरुग् बुद्धिः समुज्जृम्भते ।।

[८१]

यो वैराग्यरतः क्षिणोति सकलं जन्मार्जितं सञ्चयं
पापानां, तव पादयोरवनतो वाक्चित्तदेहेन्द्रियैः ।
धर्मस्तस्य विवर्धते प्रतिदिनं कीर्तिस्तथा किञ्च तच्-
छत्रुर्नश्यति कामवर्धितवपुर्दुष्कर्मराशिर्द्रुतम् ।।

[८२]

यो मन्त्रैः प्रसभं क्षणं मणिलसच्छ्रीकूर्मयन्त्रे स्थितां
त्वां पद्मैश्च सिताभ्रकुङ्कुमयुतैः संपूजयेन्मानवः ।
तं धन्यं पिककूजितप्रियवचोमाधुर्यदक्षं शुभो
मन्त्रोच्चारणकाल एव कुरुते ते दृष्टिपातः कविम् ।।

[८३]

भक्तानामघनाशनैकनिपुणे ! यस्ते पदं शारदे !
वाचा वर्णयते मुदा प्रतिदिनं भक्त्या समाराधितम् ।
सर्वं पापचयं क्षिणोषि सहसा तस्य प्रसन्ना सती
सद्यः किञ्च तनोषि काञ्चन परां विद्यां वहन्तीं मतिम् ।।

[८४]

यः स्वैरं वरदे ! त्वदीयकरुणास्फारप्रसादोल्लसत्-
पाण्डित्यो विशदीचिकीर्षतितरां त्वामात्मनश्चित्कलाम् ।
धन्यायत्ययमाशु शुद्धमतिकस्तस्याननान्निर्गते,
मुक्तिः, स्तोत्रसुधासरोवररसोल्लासे मरालीयते ।।

[८५]

हे सरस्वती ! 'गूंगे मे अच्छी कविता, अन्धे मे दिव्य दृष्टि, वन्ध्या मे सुपुत्र, बहरे में श्रवण शक्ति तथा विषयलोलुप पुरुष मे यथेच्छ समाधि में स्थिति'—इस प्रकार की समस्त मनोरथों की परम्परा को तुम ध्यान मे एकाग्र बुद्धि वाले तुम्हारे निज जन मे निरन्तर वर्षा करती रहती हो। मुझ में तो केवल दृढ़ भक्ति उत्पन्न कर दो।

[८६]

हे सरस्वती ! देवता गण तुमको सांगोपांग वेदो द्वारा प्रणाम की गयी व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप वाली शब्द शक्ति मानते है। जो व्यक्ति दृढ चित्तवृत्ति से अपने अन्त-र्हृदय में निरन्तर तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी गद्यपद्यस्वरूपिणी शुभ वाणी सर्वतो-मुखी होकर फैल जाती है।

[८७]

हे सरस्वती ! तुम कमलधाम मे निवास करने मे रसिक हो। जो व्यक्ति वेदवल्ली के प्रफुल्ल पुष्पो के गन्धपुञ्ज का विस्तार करने वाली तथा कमल (-कोशो) मे छुपे हुए काले-काले भँवरो का भ्रम कराने वाली तुम्हारी (दिव्य) वेणी को प्रणाम कर लेते है, उनका (दसो) दिशाओ के कोने-कोने मे फैलने वाला, निर्मल तथा आकाशगंगा के समान शुभ यश बडे-बड़े बुद्धिमानो को भी आश्चर्य चकित कर देता है।

[८८]

हे भारती ! दिव्य बुद्धि तथा सत्तर्क के मुग्ध स्वन से सम्पन्न जो व्यक्ति, शुद्ध आचार-विचार का ज्ञान कराने वाले मार्ग के व्यापारपटुओ की ईश्वरी तथा क्लेशाग्नि के तापो को शान्त करने वाली प्रच्छन्न मेघमाला-स्वरूपिणी तुम्हारी वाणी को, नित्य प्रणाम करते है, उनकी सरस्वती वाद-विवाद मे विरोधी प्रतिवादियो को जीत लेती है।

[८९]

हे सरस्वती ! स्वर्ग मे देवराज इन्द्र की सभा को भी वश मे करने की कला मे मधुर (गन्धर्व-) विद्या के मद को तुम्हारी निपुण वीणा तत्काल तिरस्कार कर देती है। जो उस (वीणा) की मधुर ध्वनि को सुनने का यत्न करते है, उन सज्जनो के मुख तट पर अमृत रस स्वय नट बनकर अपना कोमल नृत्य पुन:-पुन: करता रहता है।

[८५]

मूके सत्कवितां, दृशाविरहिते दिव्येक्षणं, सत्सुतं
वन्ध्यायां, बधिरे श्रुतिं, विषयिणि स्वैरं समाधौ स्थितिम् ।
इत्येताः सकला मनोरथततीर्वर्षस्यजस्रं निजे
ध्यानैकाग्रमतौ जने, मयि पुनर्भक्ति दृढां कल्पयेः ।।

[८६]

साङ्गोपाङ्गश्रुतिगणनुतां शब्दशक्तिस्वरूपां
व्यक्ताव्यक्तां गिरमथ गणा मन्वते त्वां सुराणाम् ।
यो वाऽजस्रं दृढतरमनोवृत्तिरन्तः स्तुवीत
वाणी तस्य प्रसरति शुभा गद्यपद्यस्वरूपा ।।

[८७]

दिव्याऽऽम्नायलताप्रफुल्लसुमनोगन्धौघविस्तारिणीं
वेणीं पङ्कजलीनकृष्णमधुलिट्शङ्काकरीं ये नुताः ।
तेषां पुष्करधामवासरसिके ! विस्माययेद् सद्यशः
काष्ठाकोणविसारिनिर्मलवियद्गङ्गानिभं धीमताम् ।।

[८८]

शुद्धाऽऽचारविचारबोधनपथव्यापारपद्धीश्वरीं
वाणीं क्लेशकृशानुतापशमनप्रच्छन्नकादम्बिनीम् ।
ये नित्यं प्रणमन्ति दिव्यधिषणाः सत्तर्कमुग्धस्वना-
स्तेषां भारति ! भारती विजयते वादे विरुद्धानरीन् ।।

[८९]

स्वर्देवेन्द्रसभावशीकृतिकलामाधुर्यविद्यामदं
गन्धर्वस्य तिरस्करोति निपुणा वीणा त्वदीया द्रुतम् ।
ये तस्या मधुरं ध्वनिं श्रुतिपथं नेतुं यतन्ते सतां
तेषामास्यतटे सुधारसनटश्चर्कर्ति लास्यं स्वतः ।।

[९०]

हे वीणावादिनी सरस्वती ! तुम्हारे कानो के कुण्डलों मे चमकते हुए माणिक्य खण्ड का शुक (श्री शुकदेव) दाडिम का बीज समझकर भक्तिपूर्वक बार-बार ध्यान करते रहते है। जो व्यक्ति दिव्य वाणी के प्रवाह से सुन्दर उन (श्री शुकदेव) का ध्यान करते है, उनकी मति श्रीमद्भागवत महापुराण के (दिव्य) अर्थों की निर्मल कथा के अमृत का पान करती रहती है।

[९१]

हे शारदा ! तुम्हारी पुस्तक ब्रह्मा के हाथ मे धृत वेदों से उत्पन्न वाक्सन्दोहपुष्प के समान है और निगमागम की उक्तियो का अतिशय करने वाले ज्ञान की आलय है। जो श्रेष्ठ कवि उस (पुस्तक) को जानने में समर्थ हो जाते है, उनकी विदग्ध मति नाना प्रकार के काव्य-पटो की विस्तार-पटुता से समन्विता होकर चारो तरफ फैल जाती है।

[९२]

हे शारदा ! तुम्हारी माला नाना सद्गुण-सूत्र से गुथी हुई है और बड़ी-बड़ी स्फटिक मणियो से बनायी गयी है। अपनी शुभ्र कान्ति की प्रभा से आन्तर अन्धकार को नष्ट करने मे प्रवीण है। जो समाहित चित्त वाले (योगी अथवा भक्त) इस माला का ध्यान करते है, उनका दुरन्त अन्धकार-समूह उन प्रज्ञावानो को बाधा पहुँचाने मे समर्थ नही हो सकता।

[९३]

हे सरस्वती ! तुम इस स्तोत्र से प्रसन्न हो। देवता, मुनि तथा असुर तुम्हारी चरण युगली की आराधना करते है। तुम सदा प्रबुद्ध रहती हो। तुम्हारे चरणो की प्रतिदिन प्रीतिपूर्वक उपासना करने वालो की अनादि इच्छा तथा मोह को तुम नष्ट कर देती हो। तुम्हारी कृपा मोहान्धकार को नष्ट करके भक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाली हो जाती है, कल्याणी तथा कल्पलता बन जाती है। हे देवी ! इसलिए मुझ पर भी अपनी करुणा की वर्षा करो।

[९४]

हे सरस्वती ! भ्रमर-जप से तुम्हारा हृदय-कमल प्रमुदित हो जाता है और तुम प्रातःकाल अपनी वीणा को बजाती हुई परमानन्द को समस्त दिशाओ मे बिखेरती रहती हो। उससे मेरे पाप तथा प्रवृद्ध मोहान्धकार को भी नष्ट कर दो। मैं (मानसिक त्रिविध) दुःखो से पीडित हूँ, तुम्हारी चरण-युगली की शरण लेता हूँ। मुझे पुण्य-बुद्धि प्रदान करो।

[९०]

वीणावादिनि ! कर्णकुण्डललसन्माणिक्यखण्डं ध्रुवं
कीरो दाडिमबीजबुद्धिरनघो दाध्याति भक्त्या मुहुः ।
ये तं दिव्यवचःप्रवाहसुभगं ध्यायन्ति तेषां मतिः
श्रीमद्भागवतार्थनिर्मलकथापीयूषमाचामति ॥

[९१]

वेधोहस्तधृतश्रुतिप्रभववाक्संदोहपुष्पोपमं
ग्रन्थं ते निगमागमोक्त्यतिशयिज्ञानालयं शारदे ! ।
ज्ञातुं ये प्रभवन्ति सत्कविवरास्तेषां विदग्धा मति-
र्नानाकाव्यपटप्रतानपटुतोपेता समुज्जृम्भते ॥

[९२]

नानासद्गुणसूत्रगुम्फितबृहच्छ्वेतोपलैः कल्पितां
मालां शुभ्ररुचिप्रभाऽऽन्तरतमोनाशप्रवीणामिमाम् ।
ये ध्यायन्ति सदा समाहितहृदस्तेषां दुरन्तस्तमः-
स्तोमो न प्रभवेदमून् क्वचिदपि प्रज्ञान्वितान् बाधितुम् ॥

[९३]

ऐं ऐं ऐं स्तोत्रतुष्टे सुरमुनिदनुजाऽऽराधिताङ्घ्र्यब्जयुग्मे
वाञ्छामोहावनादी तव चरणजुषां ध्वंसयित्रि प्रबुद्धे ! ।
कल्याणी कल्पवल्ली भवति तव कृपा भक्तिमुक्तिप्रदा सा
हत्वा मोहान्धकारानिति मयि कुरुतां देवि ! कारुण्यवृष्टिम् ॥

[९४]

क्लीं क्लीं क्लीं भृङ्गजापप्रमुदितहृदयाम्भोरुहे ! वल्लकीं स्वां
वादं वादं प्रभाते विकिरसि परमां निर्वृतिं दिक्षु दिक्षु ।
तेन ध्वंसं नयेथा मम दुरितमथ स्फारमोहान्धकारं
दुःखाऽऽर्तोहं प्रपद्ये तव चरणयुगं देहि मे पुण्यबुद्धिम् ॥

[९५]

हे सरस्वती ! तुम ज्ञानरूपिणी हो । जो प्रातःकाल (ब्रह्ममुहूर्त में) तुम्हारे चरण-कमल का आश्रय लेते हैं, तुम हमेशा उनको तत्काल नवनवोन्मेषशालिनी काव्यबुद्धि प्रदान करती हो । मैं मूर्ख-शिरोमणि हूँ । सैकड़ों जन्मों के पापों से मेरी बुद्धि का प्रकाश आच्छन्न है । मुझ जैसे मन्द-बुद्धि में भी तुम कवि-बुद्धि का बीज उत्पन्न कर दो ।

[९६]

हे सरस्वती ! बीज मन्त्रों के स्फुरण के जप से उत्पन्न होने वाले पर-आह्लाद से तुम्हारा अन्तरङ्ग प्रसन्न रहता है । तुम (मेरे) जप से पूर्ण सन्तुष्ट हो चुकी हो । अपने शरणागत को भी सन्तुष्ट करने की तुमने प्रतिज्ञा कर रखी है । वेदान्त का ज्ञान तुम्हारा गान करता है । देवगुरु बृहस्पति भी तुमको ही पढ़ते रहते हैं । तुम दिव्यबुद्धि-स्वरूपिणी हो । मुझ जैसे मोहपात्र में भी अपनी निर्मल कृपा का लेश उत्पन्न करो ।

[९७]

हे सरस्वती ! इस संसार मे जब कोई मूर्ख भी तुम्हारी कृपा प्राप्त कर लेता है, तब वाणी से विदग्ध तथा विस्तृत काव्यचातुरी की कुशलता से विद्वद्गोष्ठी में विजयी हो जाता है । तुम ज्ञानसागर हो और विनत जनों के अज्ञान-सागर को नष्ट कर देती हो । मैं भी प्रणत होकर तुम्हारी स्तुति कर रहा हूँ । मुझ मोहान्ध तथा दुःखदग्ध को भी अपनी नयन-कृपा के कटाक्ष-पात का आस्पद बना लो ।

[९८]

हे सरस्वती ! तुम शुभ्र वर्ण वाली हो । अपनी धवलातिधवल वाग्धारा से भक्तों के पापों को धो देती हो और मन ही मन मुस्कराती रहती हो । तुम चन्द्रमा के समान मनोरम हो और (समस्त) सिद्धियों को प्रदान करने वाली हो । जो तुम्हारी स्तुति करता है, इस लोक मे उसकी श्रीवृद्धि होती है, उसकी कविता का प्रवाह गंगा की धारा के समान बहने लगता है । इसलिए यह मूढ भी तुम्हारे चरणों मे नत होकर सिद्धि लाभ के लिए तुमको प्रणाम करता रहता है ।

[९९]

हे करुणानिधि शारदा ! तुम प्रसन्न हो जाओ । मुझे मोक्ष देने वाली विधि को बता दो और मेरी जिह्वा पर तुम अपना आसन बना लो । तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाली सरस बुद्धि मुझ में विस्तृत कर दो और पण्डितों द्वारा आधारित तुम्हारी कृपा की अमृतझरी मुझे निरन्तर प्रदान कर दो ।

[९५]

सौं सौं सौं ज्ञानरूपे नवनवधिषणाशालिनीं काव्यबुद्धिं
प्रातस्त्वं यच्छसि द्राक् पदकमलयुगं संश्रितेभ्यः सदैव ।
मूर्खाणामग्रगेऽस्मिन् जनिशतदुरितच्छन्नबुद्धिप्रकाशे
मादृक्षे मन्दबुद्धावपि कविधिषणाबीजमुत्पादयेथाः ॥

[९६]

ह्रीं ह्रीं ह्रीं बीजमन्त्रस्फुरणजपपराह्लादहृद्यान्तरङ्गे !
सन्तुष्टं जापतुष्टे ! शरणमुपगतं कर्तुमात्तप्रतिज्ञे ! ।
श्रुत्यन्तज्ञानगीते ! सुरगुरुपठिते ! दिव्यबुद्धिस्वरूपे !
मादृक्षे मोहभाण्डे निजविमलकृपालेशमापादयेथाः ॥

[९७]

श्रीं श्रीं श्रीं त्वत्प्रसादाज्जगति विजयतेऽपण्डितः प्राज्ञगोष्ठी-
स्थाने वाणीविदग्धप्रसृमरकविताचातुरीकौशलेन ।
स्तौमि त्वां ज्ञानसिन्धुं प्रशमितविनताऽज्ञानसिन्धुं नतोऽहं
मोहान्धं दुःखदग्धं कुरु नयनकृपाऽऽपाङ्गपातास्पदं माम् ॥

[९८]

ध्रीं ध्रीं ध्रीं शुभ्रवर्णा धवलतमवचोधारया धौतपङ्कां
भक्तस्यान्तर्हसन्तीं हिमरुचिरुचिरां स्तौति यः सिद्धिदात्रीम् ।
लोके श्रीर्वर्धतेऽस्य प्रवहति कविताप्रस्रवो जाह्नवीव
त्वां तस्माद् वन्दतेऽयं तव चरणनतः सिद्धिलाभाय मूढः ॥

[९९]

प्रसीद करुणार्णवे ! दिश दिश प्रथां मोक्षदां
विधेहि रसनाञ्चले मम निजाऽऽसनं शारदे ! ।
तनुष्व सरसां मतिं मयि तवाङ्घ्रिसेवापरां
ददस्व सततं कृपामृतझरीं बुधाराधिताम् ॥

[१००]

हे व्यापिनी शारदा ! तुम अन्तर्यामी होकर अपने ज्ञप्ति-स्वरूपों से हमेशा सम्पूर्ण जगत् का नियमन करती हो। इसलिए त्रिभुवन में तुम कामधेनु समझी जाती हो, जो तुम्हारे नाम तथा गुणों के अनुवाद का रसिक (-विहारी) श्रद्धापूर्वक उनका कीर्तन करता है, विद्वज्जन उसके समस्त मनोरथों को सत्य मानते हैं।

[१०१]

तुम्हारी कृपा से प्रणीत इस 'सारस्वतम्' नामक सरस तथा मधुर स्तव काव्य को तुम स्वीकार करो। माँ प्रसन्न होकर बालक के स्खलित तथा मुग्ध भी वाक्चापल को सुनती ही है।

[१०२]

तुम्हारे अमृत की बूंद से मिश्रित मेरी वाणी किस (सहृदय) व्यक्ति को सुधासागर के रस में नहीं डुबोएगी ? किसको दिव्य चक्षु नही बनाएगी ? और (इस स्तुति के) पाठ से किसको मुक्तात्माओं की धुरा में स्मरणीय नही करेगी ?

[१०३]

इस 'सारस्वतम्' काव्य के मधुर रस से तृप्त मेरे पूज्यपाद पिताजी पण्डित श्री रामप्रतापजी शास्त्री प्रसन्न हो और यहाँ इस (रसिकविहारी) पुत्र में संसार-सागर को पार करने के लिए नाव बनने वाली कृपा करें।

[१०४]

अमृत के सार के समान इस 'सारस्वतम्' काव्य को सुनकर रसिक (-विहारी) के मस्तक पर मुक्ति की वर्षा करती हुई गोलोकधाम गयी हुई भी मेरी स्मितवदन माँ श्रीमती तुलसी बाई शास्त्री मेरे प्रति मन्द-मन्द मुस्कराती रहें।

[१००]

अन्तर्यामितया नियच्छसि जगत् ज्ञप्तिस्वरूपैः सदा
तस्माद् व्यापिनि शारदे ! त्रिभुवने त्वं भाविता कामधुक् ।
यस्ते नामगुणानुवादरसिकः श्रद्धान्वितः कीर्तयेत्
कृत्स्नास्तस्य मनोरथा अवितथाः सङ्कल्पिताः सूरिभिः ॥

[१०१]

अङ्गीकुरुष्व सरसं मधुरं स्तवं मे
सारस्वतं तव कृपाभरतः प्रणीतम् ।
माता शिशोः स्खलितमुग्धमपि प्रसन्ना
वाक्चापलं श्रुतिपुटीविषयीकरोति ॥

[१०२]

सम्मिश्रितं तव सुधापृषता वचो मे
कं वा सुधोदधिरसे विनिमज्जयेन्न ।
कं वा न दिव्यनयनं विदधीत पाठा-
न्मुक्तात्मनामपि धुरि स्मरणीयवर्णम् ॥

[१०३]

सारस्वतेन मधुरेण रसेन तृप्ता
रामप्रतापचरणा मम तातपादाः ।
प्रीता भवन्तु तनयेऽत्र कृपाञ्च कुर्युः
संसारसिन्धुतरणे तरणीभवन्तीम् ॥

[१०४]

पीयूषसारमिव काव्यमिदं निशम्य
सारस्वतं रसिकमूर्धनि मुक्तिवर्षम् ।
माता च मे स्मितमुखी तुलसी गतापि
गोलोकधाम भजतां मयि मन्दहासम् ॥

[१०५]

जो व्यक्ति प्रतिदिन तुम्हारे चरणारविन्द के चिन्तन के साथ इस 'सारस्वतम्' काव्य का पाठ करेगा अथवा हृदय में इसकी भावना करेगा, उसको तुम मृत्यु के समय विमल मति, समाधि-निपुण चित्त और परम सिद्धि प्रदान करोगी ।

डॉ. रसिकविहारी जोशी द्वारा विरचित 'सारस्वतम्'
काव्य का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण ।

॥ श्रीः ॥

[१०५]

यः कीर्तयेदनुदिनं हृदि भावयेद्वा
सारस्वतं सह पदाम्बुजचिन्तनेन ।
तस्मै ददासि विमलां मतिमन्तकाले
चित्तं समाधिनिपुणं परमाञ्च सिद्धिम् ॥

इति जोशीत्युपाह्वस्य डाक्टररसिकविहारिशास्त्रिणः
कृतिषु 'सारस्वतं' नाम काव्यं सम्पूर्णम्
॥ श्रीः ॥

सारस्वतान्तर्गत-श्लोक-पादसूची

ञ

त